विज्ञानवाद और वेदान्त की दृष्टि में दृश्य जगत्

डा. इंद्र नारायण झा
व्याख्याता व्याकरण
राजकीय शास्त्री संस्कृत महाविद्यालय चेचट कोटा

चाहे वह पश्चिमी दर्शन हो या पूर्वी दर्शन, चाहे वह आस्तिक हो या नास्तिक। हर कोई इस दृश्यमान दुनिया को समझाने की कोशिश करता है, भले ही आदमी इस दुनिया में जन्म लेता हो। इसी में सुख-दुःख भोगते हैं और इसी में मृत्यु को प्राप्त होते हैं। क्यों केवल दर्शन, ज्ञान की हर विधा, विज्ञान से लेकर कविता तक, इसे समझाने की कोशिश करती है।

भारतीय संदर्भ में हमारा पहला लिखित पाठ वेद है, जिसे आप परंपरा में अपौरुषेय और पूजनीय माना गया है। इस पुस्तक का नासदीय सूक्त संसार के बारे में हमारी सोच की पुरातनता और इसे हल करने की हमारी उत्सुकता का प्रमाण है। वैदिक नासदीय सूक्त से शुरू होकर, यह भारतीय दर्शन की हर धारा के लिए एक बहुत ही प्रिय लेकिन जटिल विषय बन गया।बौद्ध दर्शन के शून्यवादी विचारकों की दृष्टि में दृश्य और अदृश्य सब कुछ शून्य है। परन्तु इसी धारा के विज्ञानवाद को सर्वशून्यता का यह सिद्धान्त ठीक प्रतीत नहीं होता है। सर्वशून्यता को मानने पर इस मत के प्रतिपादक विचार एवं सिद्धान्त भी शून्य सिद्ध हो जायेंगे और असत् विचार किसी सत् सिद्धान्त का निर्माण नहीं कर सकता है। विज्ञानवाद का दर्शन इसी पूर्वी पीठिका पर खड़ा है। इसलिए वह शून्यता के सिद्धान्त का खण्डन करता है।

बौद्ध दर्शन के दार्शनिक सम्प्रदायों में योगाचार या विज्ञानवाद एक प्रमुख तार्किक सम्प्रदाय है। आचार्य अश्वघोष, आर्य असंग, आचार्य वसुबन्धु तथा आचार्य स्थिरमति ने इस सम्प्रदाय को दर्शन के तार्किक धरातल पर परिनिष्ठित किया। विज्ञानवाद के अनुसार विज्ञान के अतिरिक्त सम्पूर्ण जगत् तथा इसमें उपलब्ध समस्त पदार्थ असत् हैं। इस जगत् में जो कुछ हमें विविध नाम एवं रूप में दिखाई पड़ता है, वह मृगमरीचिका एवं स्वप्न के समान असत् है।" एक मात्र सत् पदार्थ है- विज्ञान आचार्य वसुबन्धु के अनुसार समस्त भासमान विषय असत् है तथा विज्ञान मात्र हो है। विविध शास्त्रों में आत्मा एवं धर्म सम्बन्धी विविध व्यवहार विज्ञान मात्र का परिणाम है। इस प्रकार विज्ञानवाद के अनुसार एक मात्र विज्ञान सत् है तथा अन्य समस्त दृश्य एवं अदृश्य पदार्थ विज्ञान का परिणाम है। विज्ञानवाद के प्रतिपादक ग्रन्थों में इसको ही चित्त, मन, विज्ञप्ति, धर्मकाय तथा धर्मधातु कहा गया है।

विज्ञानवाद जिसको विज्ञान कहता है वस्तुतः वह हमारे शरीर के अन्दर का पदार्थ है। उसी पदार्थ की उपस्थिति के कारण यह शरीर गतिशील एवं सक्रिय है। ज्ञानेन्द्रिय एवं कर्मेन्द्रिय की गति उसी पर आश्रित है आप परम्परा में उसी को 'आत्मा' शब्द से सम्बोधित किया जाता है, परन्तु विज्ञानवाद उसको आत्मा नहीं कहता है और न ही उस पर आत्मा के गुणों का आरोप करता है। इसी आन्तर पदार्थ को विज्ञानवाद विज्ञान नाम से सम्बोधित करता है।

किसी भी दार्शनिक धारा के लिए दृश्य जगत् की सत्ता को अस्वीकार करना एक कठिन कार्य है। इसको अनुभूति मृद और बुद्धिमान् दोनों ही करते हैं। सतही स्तर पर इसको नकारना सम्भव नहीं है। अतः प्रत्येक दार्शनिक धारा अपनी मूल संकल्पना के अनुरूप दृश्य जगत् की व्याख्या के लिए सिद्धान्तों का निर्माण

करता है।

इस समस्या के समाधान के लिए विज्ञानवाद विस्वभाव का सिद्धान्त प्रतिपादित करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार मूल तत्व एक है। वह विज्ञान है परन्तु उसकी प्रतीति अनेक रूपों में होती है। कभी-कभी हमें सत्ताहीन तत्त्व को प्रतीति होने लगती है। यथा 11/286 में सत्ताहीन तत्त्व सर्प की प्रतीति। इसी प्रकार कभी-कभी रूम की भी प्रतीति नहीं होती है। यथा भ्रम को अवस्था में हमें विद्यमान रज्जु नहीं सर्प प्रतीति होता है।

विज्ञानवाद

विज्ञानवाद और वेदान्त की दृष्टि में दृश्य जगत्

के अनुसार से समस्त प्रतीतियाँ विज्ञान का परिणाम मात्र है। विज्ञान के इस परिणाम को विज्ञानवादी त्रिस्वभाव कहता है।" त्रिस्वभाव अर्थात् तीन स्वभाव, ये हैं परिकल्पित परतन्त्र तथा परिनिष्पन्न।"

परिकल्पित

कभी-कभी हमें ऐसी वस्तु की सत्ता का आभास होता है जिसकी सत्ता कथमपि नहीं है। रज्जु में सर्प की प्रतीति इसका प्रमुख दृष्टान्त है। रज्जु में सर्प की स्थिति कथमपि नहीं होती है, परन्तु भ्रम को अवस्था में हमें रज्जु में सर्प की प्रतीति होती है ऐसी प्रतोतियों को विज्ञानवाद परिकल्पित कहता है। त्रिंशिकाविज्ञप्ति कारिका में कहा गया है कि जिस-जिस विकल्प से जिस-जिस वस्तु का विकल्प होता है, वह परिकल्पित स्वभाव है। कल्पना पर आश्रित होने के कारण ये विद्यमान नहीं है। अतः इनकी सत्ता भी नहीं है। ऐसी वस्तुएँ सदा मिथ्या होती हैं परन्तु विकल्प गौरव से वस्तुवद् प्रतिभासित होती है। जिस प्रकार शशश्रृंग एवं आकशकुसुम त्रिकाल असत् होते हैं, उसी प्रकार परिकल्पित वस्तुओं की सत्ता त्रिकाल असत् होती है। परिकल्पित केवल भ्रम है। भ्रम के निराकरण होते ही परिकल्पित की सत्ता निर्मूल सिद्ध हो जाती है। विज्ञानवाद की दृष्टि में लोक व्यवहार के समस्त पदार्थ, आत्मा, बाह्य तथा मानस पदार्थ, इन्द्रियाँ, मन आदि सभी परिकल्पित हैं।" विज्ञप्तिमात्रासिद्धि में आचार्य वसुबन्धु ने कहा है कि जिस प्रकार पोलियाग्रस्त रोगी को सब पदार्थ पीले दिखाई पड़ते हैं या दृष्टिदोष के कारण सभी वस्तुएँ केशवत् पतले और उड़ते हुए दीखते हैं या एक चन्द्रमा के स्थान पर दो चन्द्र दिखाई देते हैं, उसी प्रकार अविद्याग्रस्त प्राणियों को बाह्य पदार्थों की प्रतीति होती है।"

परतंत्र

परतंत्र वे पदार्थ हैं जिनकी सत्ता तो नहीं होती परन्तु उनकी उपस्थिति सापेक्षता के कारण होती है। इनकी सत्ता मूल पदार्थ की अपेक्षा से होती है। त्रिशिकाविज्ञप्तिकारिका में कहा गया है, परतंत्रस्वभावस्तु विकल्पः प्रत्ययोद्भवः अर्थात् वे विकल्प जो प्रत्यय से उत्पन्न होते हैं, परतंत्रस्वभाव वाले होते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि जिनका अस्तित्व अपने से भिन्न प्रत्ययों पर निर्भर है, वे परतंत्र हैं। स्वभिन्न हेतु प्रत्यय से उत्पन्न होने के कारण से परतंत्र हैं। वस्तुतः परिनिष्पत्र में जब अविद्या का स्फुरण होता है तब वह परतंत्र के रूप में प्रतीत होता है। परतंत्र भ्रम का आश्रय होता है तथा अर्थाकार प्रतीत होता है जब रज्जु में सर्प की प्रतीति होती है तब रज्जु को सर्प रूप में प्रतीति परिकल्पित है तथा सर्पाकार प्रतीति परतंत्र हैं। यह सर्पकार प्रतीति वस्तुतः कर्मसंस्कार एवं वासनाओं का प्रतिफल है। सर्पाकार प्रतीति ही परिकल्पित का आश्रय है।

परिनिष्पन्न

परिनिष्पन्न विज्ञान है। विज्ञानवाद इसी परिनिष्पत्र की सत्ता को स्वीकार करता है। यहीं उसका मूल पदार्थ है, अन्य सभी दृश्य पदार्थ अवास्तविक हैं। इसके विषय में त्रिशिकाविज्ञप्तिकारिका में कहा गया है निष्पन्नस्तस्य पूर्वेण सदा रहितता तु या।" अर्थात् परिकल्पित ग्राह्यग्राहक भाव से सर्वदा रहित पदार्थ परिनिष्पन्न है। इसी के

भाष्य में कहा गया है-अधिकरपरिनिष्पत्यास परिनिष्पन्न स्वभाव: । इसको आकाश के समान सर्वव्यापी और निर्मल कहा गया है। " विज्ञानवादी इसी को तथता भूतकोटि अनिमित्त, धर्मधातु, धर्मता शून्यता, विज्ञप्ति मात्रता और परमार्थ कहते हैं आचार्य वसुबन्धु ने इसे अत्यन्त विशुद्ध अनास्तव, धातु, अचिन्त्य, कुशल, ध्रुव, सुख, विमुक्तिकाय तथा महामुनि भगवान् बुद्ध का धर्मकाय कहा है।"

इस प्रकार यह त्रिस्वभाव न तो तीन सत् है, न ही तीन सत्ता है और नहीं सत्ता के तीन स्तर हैं। इनमें परिनिष्पन्न एक मात्र सत् है। परतंत्र और परिकल्पित असत् है। परन्तु इनकी प्रतीति होती है, अतः इन्हें स्वभाव के अन्तर्गत रखा गया है। विज्ञान के इन त्रिस्वभाव की तुलना अद्वैत वेदान्त के प्रतिभास, व्यवहार एवं परमार्थ से की जा सकती है। वेदान्त दर्शन में ब्रह्म को एक मात्र सत् माना जाता है। ब्रह्म को ही वहाँ परमार्थ कहा गया है।

विज्ञानवाद और वेदान्त की दृष्टि में दृश्य जगत्

प्रतीति जैसी प्रतीतियों को वेदान्त में प्रतिभास कहा गया है और जागतिक प्रतीतियों को व्यवहार कहा जाता है। प्रतिभास और व्यवहार दोनों ही असत् हैं, परन्तु जब तक सतु का ज्ञान नहीं हो जाता तब तक ये असत् होते हुए भी सत् प्रतीत होते हैं।

वेदान्त दर्शन के इस सिद्धान्त को सत्ता जय भी कहा जा सकता है। प्रातिभासिक सत्ता के अन्तर्गत क्षणिक अस्तित्व वाले विषय आते हैं। स्वप्न तथा भ्रम की अवस्था म रज्जु में सर्प की प्रतीति का शुक्ति में रजत् को प्रतीति इसका प्रमुख दृष्टान्त है। प्रतोतिकाल में इनका स्वरूप यथार्थ प्रतीत होता है किन्तु आगृत-काल या भ्रमनिवृत्ति के बाद इनका बाध हो जाता है। इनको मिथ्या सिद्धि हो जाती है।

व्यवहारिक सत्ता के अन्तर्गत आने वाले विषय व्यवहार रूप से सत् प्रतीत होते हैं, व्यवहारिक स्तर पर उनको सत्ता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। इनके अन्तगत समस्त सांसारिक पदार्थ जीव जगत् तथा इनके अवयव आते हैं। इनका इन्द्रियों से स्पष्ट प्रत्यक्षीकरण होता है। अतः इनकी सत्ता का अपलाप नहीं किया जा सकता है। परन्तु वेदान्त दर्शन इनकी सत्ता को सत् नहीं मानता है। व्यवहारिक स्तरपर ये सत् हैं परन्तु अविद्या के विनाश तथा ब्रह्म का साक्षात्कार होते ही इनकी सत्ता असत् सिद्ध हो जाती है। प्रातिभासिक सत्ता को अपेक्षा इसका अस्तित्व अधिक स्थायी होता है।

परमार्थिक सत्ता परम सत् है। यह त्रिकाल सत् है। किसी भी क्षण किसी भी अवस्था में यह बाधित नहीं होती है। इसके अन्तर्गत एकमात्र ब्रह्म की सत्ता आती है। इस सत्ता का वास्तविक ज्ञान होते ही व्यवहारिक सत्ता का क्षय हो जाता है जैसे स्वप्न से जागे हुए व्यक्ति को स्वप्न के मिथ्यात्व का अनुभव होता है उसी प्रकार ब्रह्म का ज्ञान हो जाने पर जगत् के मिध्यात्व का अनुभव होता है। आदिशंकराचार्य ने स्वयं कहा है- एकमेव हि परमार्थसत्यं ब्रह्म । *

विज्ञानवाद और वेदान्त की इन दोनों अवधारणाओं की विवेचना करने पर इन दोनों में कुछ समानताएँ एवं विषमताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। कुछ प्रमुख समानताएँ निम्नांकित हैं :

1 विज्ञानवाद परिकल्पित को असत् मानता है। वेदान्त भी प्रतिभास को असत् मानता है।

2 विज्ञानवाद के अनुसार यह सम्पूर्ण जगत् परिनिष्पन्न (विज्ञान) का प्रतिभास मात्र है। वेदान्त भी इस जगत् को ब्रहा का प्रतिभास कहता है। विज्ञानवाद के अनुसार अनादि ग्राहकग्राह्य वासना के कारण परिनिष्पन्न (विज्ञान) जीव और जगत् के रूप में आभासित होता है। वेदान्त के अनुसार भी अनादि माया शक्ति के

कारण ब्रह्म जीव और जगत् के रूप में प्रतीत होता है।

3 विज्ञानवाद का परिनिष्पन्न (विज्ञान) निरपेक्ष, अज, नित्य, अचल अपरिणामी, ज्ञातृज्ञेयभेदरहित, ग्राहकग्राह्यद्वैतरहित अद्वय, अद्वैत, अनाभास, असंग, स्वप्रकाश स्वयं ज्योति, परम विशुद्ध अतिन्द्रय निर्विकल्प, अनिर्वचनीय, अपरोक्षानु भूतिगम्य अनास्रव, लोकोत्तर ज्ञान, अखण्ड, आनन्द तथा अनिर्वचनीय सुखस्वरूप है। वेदान्त दर्शन में भी पारमार्थिक सत्ता 'ब्रह्म' को इन विशेषताओं से युक्त माना गया है।

4 विज्ञानवाद के अनुसार सम्पूर्ण द्वैत संसार परिनिष्पन्न (विज्ञान) का आभास है। वेदान्त के अनुसार सम्पूर्ण द्वैत जगत् ब्रह्म का आभास है। विज्ञानवाद का परतंत्र वासना की अपेक्षा से है। वैदान्त का व्यवहार अविद्या को अपेक्षा से है।

दोनों अवधारणाओं में कुछ विषमताएँ निम्नांकित हैं:

1 विज्ञानवाद इस जगत् की सत्ता को किसी भी रूप में स्वीकार करने को तैयार नहीं है। वह इसे परिकल्पित कहता है। इसके विपरीत अद्वैत वेदान्त इस जगत् की व्यावहारिक सत्ता स्वीकार करता है वह इसे व्यवहार कहता है।

2 विज्ञानवाद समस्त दृश्य पदार्थों एवं क्रियाओं को असत् तथा उन्हें अर्थकार विज्ञानों की प्रतीति मानता है। उनके अनुसार जो कुछ अनुभव होता है, वह अर्थाकार विज्ञानों का अनुभव है। पदार्थ एवं क्रियाएँ परिकल्पित हैं तथा पदार्थाकार विज्ञान परतंत्र है। अद्वैत वेदान्त के अनुसार व्यवहार में हमें पदार्थों का अनुभव होता है, परमार्थ या परमार्थ के प्रवाह का नहीं। इसको वह व्यवहार कहता है।

3 विज्ञानवाद में रज्जुसर्प की प्रतोति स्वप्नपदार्थ की प्रतीति एवं जागतिक प्रतीति सबके सब परिकल्पित हैं अर्थात् समान रूप से असत् हैं। इन सब में विज्ञान ही अर्थों का आकार लेकर प्रतीत होता है। वेदान्त स्वप्नपदार्थ की प्रतीति एवं जागतिक पदार्थों की प्रतीति में भेद मानता है।

विज्ञानवाद और वेदान्त की दृष्टि में दृश्य जगत्

1 स्वप्नपदार्थ को यह वह प्रतिभास कहता है तथा इसकी निवृत्ति को व्यवहार कहता है। इसकी निवृत्ति परमार्थ से होती है।

2 विज्ञानवाद में परिनिष्पन्न और परतंत्र वस्तुतः परम सत् तत्व (विज्ञान) के दो रूप हैं। वेदान्त में परमार्थ का कोई रूप नहीं है। वह अखण्ड है।

3 विज्ञानवाद में परिकल्पित और परतंत्र एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। दृश्य जगत् के पदार्थ परिकल्पित है परन्तु उनका आकार परतंत्र हैं। वेदान्त का प्रतिभास एवं व्यवहार इस तरह सम्बद्ध नहीं है। दोनों की सत्ता अलग-अलग है।

4 विज्ञानवाद के अनुसार विशुद्ध विज्ञान रूप परिनिष्पन्न अधिष्ठान है। उस पर अर्थाकार विज्ञान रूप परतंत्र का आरोप होता है। पुनः परतंत्र पर असत् परिकल्पित का आरोप होता है। वेदान्त परमार्थ पर व्यवहार का आरोप स्वीकार करता है। परन्तु व्यवहार पर प्रतिभास को नहीं।

5 विज्ञानवाद के अनुसार त्रिस्वभाव वासना भेद का परिणाम है। वेदान्त के अनुसार सत्तात्रय (परमार्थ व्यवहार प्रतिभास) पदार्थ भेद के कारण हैं।

6 विज्ञानवाद का परतंत्र परिनिष्पन्न की अपेक्षा से है। वेदान्त का व्यवहार परमार्थ की अपेक्षा से नहीं है।

इस प्रकार विज्ञान का त्रिस्वभाव एवं वेदान्त का सत्तात्रय भारतीय दार्शनिक चिन्तन के क्रमिक विकास का सोपानद्वय है। चूँकि विज्ञानवाद वेदान्त से पूर्व का दर्शन है, अत: यह वेदान्त के लिए दर्शनिक चिन्तन को

पृष्ठभूमि तैयार कर देता है। वेदान्त के समक्ष इसकी विशेषताएँ एवं कमियाँ होती हैं और वह इन दोनों का भरपूर लाभ उठाता है तथा जगत् की व्यवहारिक व्याख्या करने का प्रयास करता है।

यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि चाहे आस्तिक दर्शन हो या नास्तिक दोनों केसमक्ष विशाल उपनिषद् साहित्य उपलब्ध था। सभी ने प्रतिपादित दार्शनिक अंकुरों का खूब पल्लवन किया। यहाँ साक्ष्य के रूप में कुछ उदाहरण प्रस्तुत है

अग्निर्यथको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।।
वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।। "

यहाँ अग्नि एवं वायु के उदाहरण से समझाया गया है कि एक ही अग्नि अथवा वायु अनेक रूपों को धारण करती है तथा तदाकार प्रतीत होती है। विज्ञानवाद की दृष्टि से विचार करने पर अग्नि अथवा वायु विज्ञान (परिनिष्पन्न) है, उसको वस्त्वाकारता परतंत्र है तथा वस्तु परिकल्पित है। वेदान्त की दृष्टि से विचार करने पर अग्नि अथवा वायु ब्रह्म है तथा उसका अनेक रूपों में प्रतीत होना व्यवहार है। अतः हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि उपनिषदं दार्शनिक चिन्तन की प्रस्थान बिन्दु हैं।

संग्रन्थावली

1. भारतीय दर्शन शर्मा चन्द्रधर - मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 1995
2. भारतीय दर्शन, हिरयत्रा एम लंदन, 1956
3 भारतीय दर्शन एवं इतिहास, दासगुप्ता एन.एम. राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1989
4. लंकावतारसूत्र, वैद्य प.ल. दरभंगा 1963
5. महायानसूत्रालंकार, वागची दरभंगा 1971
6. विज्ञप्तिमात्रासिकि तिवारी महेश चौखम्बा विद्या भवन, 1967
7 मध्यान्तविभागटीका पाण्डेय, रामचन्द्र विद्या भवन, 1967
8 शरीरिक भाष्य निर्णय सागर प्रेस, मुम्बई 8.
9 कठोपनिषद्, शास्त्री, सुरेन्द्र देव चौखम्बा विद्या भवन, 1967
10. अद्वैत वेदान्त मिश्र, अर्जुन एवं दीक्षित, हृदय नारायण मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1990